Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 13, Issue No. 2, July-2017, ISSN 2230-7540

विवेकानन्द की सामाजिक व्यवस्था और राष्ट्रवाद

Sunita Devi*

Assistant Professor, Public Administration, State Girls College, Hisar

---------------------------------- X ----------------------------------

विवेकानन्द ने भारत के सामाजिक तथा राजनीतिक पतन के कारणों का अन्वेषण किया और सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन के उपाय बतलाए। विश्व उन्हें एक वेदान्ती के रूप में जानता है, भारत उनसे एक प्रचण्ड बौद्धिक तथा नैतिक पथ–प्रर्दशक के रूप में परिचित है, किन्तु हमें उनके जीवन को भारतीय इतिहास तथा राजनीति के अध्येता के रूप में भी समझना चाहिए। एशिया के महान देशों ने ईश्वर के प्रमुख तथा उसके शाश्वत् नियमों को अधिक महत्व दिया है।

विवेकानन्द ने पूर्व के पुनरूत्थान की तथा एक सामाजिक विप्लव के आगमन की भविष्यवाणी की थी। उन्होंने कहा था, ''..... शुद्रो का यह उत्थान पहले रूस में होगा, फिर चीन में। उसके उपरान्त भारत का उत्कर्ष होगा और वह भावी विश्व के निर्माण में सशक्त भूमिका अदा करेगा।

विवेकानन्द के सामाजिक चिन्तन में उनका विचार यह था कि – मन, प्राण और शरीर से हमें काम में लग जाना चाहिए और जब तक हम एक और एक ही आदर्श के लिए अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार न रहेगें तब तक हम कदापि आलोक नही देख पाएँगें। स्वामी विवेकानन्द एक प्रमुख समाज सुधारक थे। समाज के उत्थान के लिए उन्होने तन–मन–धन से कार्य किया।[1]

स्वामी विवेकानन्द एक अन्य विद्वान स्पेन्सर की तरह ही समाज को एक सार मानते थे। उनका विचार था कि 'अनेक व्यक्तियों का समूह सम्पूर्ण कहलाता है और अकेला व्यक्ति उसका एक भाग है। आप और हम अकेले व्यक्ति है, समाज एक सम्पूर्ण है, व्यक्ति की तरह सम्पूर्ण का भी एक आंगिक जीवन है, उसका भी विकासशील मस्तिष्क और आत्मा है।

सामाजिक प्रगति तभी सम्भव है जब उसके घटक कुछ बलिदान करे। क्योंकि त्याग और बलिदान किए बिना सम्पूर्ण के कल्याण की कामना व्यर्थ है। स्वामी विवेकानन्द का कर्मानुसार फल में गहन विश्वास था और इसलिए उन्होंने माना कि किसी विशेष समाज में व्यक्ति का जन्म उसके द्वारा किए गए पिछले कर्मो के आधार पर होता है।[2]

इससे यह पता चलता है कि विवेकानन्द की दृष्टि में समाज कोई मानव निर्मित संस्था न होकर ईश्वर द्वारा व्यक्तियों के पिछले कर्मो के आधार पर निर्मित संस्था है। इस प्रकार की भावना के मूल में विवेकानन्द का यह विश्वास अभिव्यक्त होता है कि मनुष्य और समाज का अस्तित्व शुभ के लिए है। अतः शुभकर्म करके ही व्यक्ति अपना और समाज का कल्याण कर सकता है। सुकर्म प्रगति की और ले–जाने वाले है। कुकर्म प्रगति का विनाशक है– हमें अधोगति की और धकेलता है। व्यक्ति केवल अपने लिए नही जीता बल्कि दूसरों के लिए जीता है और इसी में उसकी मनुष्यता छिपी है। समाज– विभिन्न व्यक्तियों का समूह है जिसके विकास के लिए व्यक्तियों द्वारा आत्म–त्याग अनिवार्य है। मानवीय सम्बन्धों का अन्तिम लक्ष्य और परिणाम सामूहिक सुख होना चाहिए, निरा व्यक्तिगत सुख नही।

भारतीय समाज की बुराईयों और पतन के कारणों पर विवेकानन्द ने प्रहार किया। स्वामी विवेकानन्द सामाजिक संगठन और सामाजिक मामलों में धर्म को घुसेड़ना पसन्द नहीं करते थे और इसी कारण वे जात–पात, सम्प्रदायवाद औद छुआछूत तथा सब तरह की विषमताओं के विरूद्ध थे। तत्कालीन भारतीय समाज की पतनोन्मुख दशा देखकर विवेकानन्द को असह्य कष्ट होता था। उन्होंने भारत के पतन के प्रमुख कारणों को ढूंढा और उनके निराकरण पर बल दिया। पतन के ये कारण थे– छुआछूत, श्रद्धा का अभाव, अंग्रेजियत और पाश्चात्य भौतिक वादी संस्कृति के प्रति अत्यधिक आकर्षण, बेईमानी, शारीरिक विकास की उपेक्षा, छात्र–भावना का पतन, कुछ सीखने के प्रति उदासीनता, भय–ग्रन्थी अथवा स्वयं को हीन मानने की भावना, मौलिकता तथा साहस की कमी, आलस्य, संकीर्ण दृष्टिकोण, धर्म की उपेक्षा तथा दुर्बलता और पिछड़ापन।[3]

सामाजिक चिन्तन :–

''मन प्राण और शरीर से हमें काम में लग जाना चाहिए और जब तक हम एक और एक आदर्श के लिए अपना सर्वस्त्र त्यागने को तैयार नहीं रहेगें तब तक हम कदापिः आलोक नहीं देख पायेगें।''[4]

विवेकानन्द के हृदय में एक आँधी थी, उनकी आत्मा में एक आग थी और वह भारत को जगाना उठाना चाहते थे। समाज–सुधार तथा देश के पुनजार्गरण के संबंध में उनके विचार बिल्कुल स्पष्ट थे। सामाजिक कार्यों के प्रति उनकी अतिशय लगन इसी तथ्य से स्पष्ट है कि उनका आग्रह था कि सामाजिक सेवा कार्यों को अध्यात्म–साधना के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया जाए।

समाज का सावयवी स्वरूप :–

विवेकानन्द स्पेन्सर की भाँति ही समाज को एक सावयव मानते थे। उनका विचार था कि ''अनेक व्यक्तियों का समूह (सम्पूर्ण) कहलाता है और अकेला व्यक्ति उसका एक भाग है। आप और हम अकेले व्यक्ति हैं।'' व्यक्ति की भाँति समष्टि का भी एक

www.ignited.in

आंगिक जीवन है। उसका भी विकासशील मस्तिष्क और आत्मा है। सामाजिक प्रगति तभी सम्भव है, जब उसके घटक कुछ बलिदान करें क्योंकि त्याग अथवा बलिदान किये बिना समष्टि के कल्याण की कामना व्यर्थ है। विवेकानन्द का कर्मानुसार फल में गहन विश्वास था और इसलिए उन्होंने माना कि किसी विशेष समाज में व्यक्ति का जन्म उसके पिछले कर्मों के आधार पर होता है।[5]

भारतीय समाज की बुराइयों और पतन के कारणो पर प्रहार स्वामी विवेकानन्द संगठन और सामाजिक मामलों में धर्म को घुसेड़ना पसन्द नहीं करते थे और इसी कारण वे जात–पात, साम्प्रदायवाद और छुआछूत तथा सब तरह की विषमताओं के विरूद्ध थे। तत्कालीन भारतीय समाज की पतनो–मुख दशा देखकर विवेकानन्द को असह्य कष्ट होता था। उन्होनें भारत के पतन के प्रमुख कारणों को ढूंढा और उनके निराकरण पर बल दिया। पतन के ये कारण थे– छुआछूत, श्रद्धा का अभाव, अंग्रेजियत और पाश्चात्य भौतिकवादि संस्कृति के प्रति अत्यअधिक आकर्षण, बेईमानी, शारीरिक विकास की उपेक्षा, छात्र भावना का पतन और कुछ सीखने के प्रति उदासीनता, भय–ग्रंथी अथवा स्वयं को हीन मानने की मनोदशा, मौलिकता तथा साहस की कमी, आलस्य, संकीर्ण दृष्टिकोण, धर्म की उपेक्षा तथा दुर्बलता और पिछड़ापन।[6]

जातिवाद और मूर्ति पूजा सम्बन्धी विचार :–

जातिवाद के विषय में स्वामी जी ने कहा कि यह देश व समाज के आत्म–सम्मान के लिए घातक है। उनका विश्वास था निम्नतर वर्गों को स्तर पर लाया जाए और ब्राह्मणों को नीचे गिराने की अपेक्षा यह उचित है कि उन्हें उनके धरातल पर ले आना चाहिए। उच्चतर को निम्नतर पर लाने से कोई लाभ नहीं होगा। बल्कि चाण्डाल को ऊपर उठाकर उसे ब्राह्मण स्तर तक ले आना ही सम्पूर्ण कार्य है।

इस बात को स्वीकार करते हुए भी किसी प्रतिभा की पूजा से प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती, स्वामी विवेकानन्द ने इसकी निन्दा नहीं की क्योंकि उनके अनुसार यह मन को ईश्वर की अनुभूति के लिए तैयार करती है। मूर्ति–पूजा में निहित भावना यही है कि हम उसको परमात्मा नहीं, किन्तु परमात्म की एक प्रतिभा मान कर पूजते है। मूर्ति–पूजा हमोर आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया में एक प्रारम्भिक अवस्था है। आध्यात्मिक विकास का आशयएक निम्नतर हीनतर सत्य की ओर प्रगति करना है और ईश्वर की अनुभूति के लिए मूर्ति पूजा ठीक वैसही ही जैसी बाल्यावस्था वृद्धावस्था की परिपक्व बुद्धि के लिए। मूर्ति पूजा के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा।

स्वामी विवेकानन्द ने मूर्ति पूजा को धर्म के लिए एक सहायक तत्व माना जो प्राथमिक अवस्था में आवश्यक है, सदैव के लिए नहीं। यह मानव स्वभाव का विधान है, लेकिन अपूर्ण मानव को इसी से ऊपर उठा सकते हैं।[7]

बाल विवाह –

विवेकानन्द ने बाल–विवाह के दुष्परिणाम को स्पष्टतया सामने रखा और कहा'' बाल विवाह से असामयिक सन्तानोंत्पति होती है और अल्पायु में सन्तान धारण करने के कारण हमारी स्त्रियां अल्पायु होती हैं, उनकी दुर्बल और रोगी सन्तान देश में भिखारियों की संख्या बढ़ाने का कारण बनती है।''

विवेकानन्द ने बाल विवाह की भर्त्सना की और घोषित किया कि ''जिस प्रथा के अनुसार अबोध बालिकाओं का पाणिग्रहण होता है, उसके साथ मैं किसी प्रकार के सम्बन्ध रखने में असमर्थ हूँ।''

उन्होंने यह भी कहा कि – ''आज घर–घर इतनी विधवाएं पाए जाने का मूल कारण बाल विवाह ही है, यदि बाल विवाहों की संख्या घट जाए तो विधवाओं की संख्या भी स्वयमेव घट जाएगी।''

बाल विवाह निराकरण, विधवा विवाह आदि सुधारों के समबन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए विवेकानन्द इन विषयों पर अपनी शक्ति व्यय करने के पक्ष में नहीं थे। उनका तर्क था कि ''हमारा कर्तव्य तो यह है कि हम समाज के प्रत्येक घटक को, चाहे वह स्त्री हो या पुरूष, शिक्षित और सुस्कृत बनाएं। जनता के इस प्रकार शिक्षित हो जाने पर, वह स्वयं अपने हानि लाभ का विचार कर इस प्रकार की कुरीतियों को निकाल बाहर करेगी और तब दबाव से किसी बात को समाज पर लादने की आवश्कयता नहीं रह जाएगी।[8]

अस्पृश्तयता का अन्त :–

अस्पृश्यता भारतीय समाज का एक गम्भीर दोष है। मध्य तथा आधुनिक युग में नानक, कबीर, राजा राम मोहन राय, स्वामी विवेकानन्द ने इसका विरोध किया।

विवेकानन्द ने भारत में व्याप्त अस्पृश्तया और रूढ़िवादिता पर कटु प्रहार किया। रूढ़िवाद को उन्होंने 'रसोई धर्म और अस्पृश्यवाद कहकर उसकी' भर्त्सना की। विवेकानन्द ने आत्मा को छू देने वाले शब्दों में कहा ''भारत में यह रोना–धोना मचा है कि हम बड़े गरीब हैं, परन्तु गरीबों के लिए कितनी दानशील संस्थाएं हैं? भारत के करोड़ो गरीबों के दुःख और पीड़ा के लिए कितने लोग असल में रोते हैं? क्या हम मनुष्य हैं? हम उनकी जीविका और उन्नति के लिए क्या कर रहे है? हम उन्हें छूते भी नहीं और उनकी संगति से दूर भागते हैं। क्या हम मनुष्य हैं? वे हजारों ब्राह्मण–भारत की नीच और दलित जनता के लिए क्या कर रहे हैं? 'मत–छू' 'मत–छू' एक ही वाक्य उनके मुख से निकलता है। उनके हाथों हमारा सनातन धर्म कैसा तुच्छ और भ्रष्ट हो गया है। अब हमारा धर्म किसमें रह गया हैं? केवल छुआ–छुत में, और कहीं नहीं।''[9]

महिलाओं के लिए समानता :–

''भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श। सीता, सावित्री, दमयन्ती हैं, मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वव्यागी उमानाथ शंकर हैं, मत भूलना तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय–सुख के लिए– अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं हैं, मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए बलिस्वरूप रखे गये हो, मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महमाया की छाया मात्र है।''[10]

स्वामी विवेकानन्द स्त्री और पुरूषों में कोई भेदभाव नहीं करते थे। विवेकानन्द चाहते थे कि स्त्रियों और पुरूषों के साथ एक जैसा व्यवहार होना चाहिए। महिलाओं को जीवन के प्रत्येक सार्वजनिक कार्य के साथ सम्बन्धित करना चाहते थे।

उन्होंने बाल–विवाह पर आघात किया। वास्तव में उन्होंने बाल–विवाह को विवाह मानने से इनकार किया जो हिन्दुओं की

सामान्य प्रथा थी। उन्होंने स्त्री शिक्षा पर बल दिया तथा उनका मत था कि स्त्रियों को पुरूषों के समान शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। स्त्री शिक्षा के विषय में विवेकानन्द के मन में कुछ सुनिश्चित विचार थे। उन्होंने एक बार कहा था, ''हमारी नारियों को धर्म, शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य, भोजन बनाना, सिलाई स्वास्थ्य आदि सब विषयों की मोटी–मोटी बातें सिखलाना उचित है।''[11]

अतः विवेकानन्द ने समाज में महिलाओं की समानता पर विशेष ध्यान दिया।''

शिक्षा सम्बन्धी धारणा :–

''हमारे लड़के जो शिक्षा पा रहे है, वह बड़ी अभावात्मक है। स्कूल के लड़के कुछ भी नहीं सिखते जो कुछ अपना है, उसका नाश हो जाता है और इसका फल श्रद्धा का अभाव है।''

– विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द वर्तमान शिक्षा प्रणाली को उपयुक्त नहीं समझते थे। उनका आक्षेप था कि वर्तमान शिक्षा ऐसी है जो मनुष्य और उसके चरित्र का निर्माण नहीं करती। शिक्षा का अर्थ केवल इतना ही नहीं होता कि अपने दिमाग में सब तरह की जानकारी भरकर उसे वाटरलू का युद्ध क्षेत्र बना दिया जाए। शिक्षा का लक्ष्य तो जीवन का निर्माण है, चरित्र का निर्माण है, मानव का निर्माण है। वर्तमान शिक्षा इन लक्ष्यों की पूर्ति में सहयोगी नहीं है। उन्होंने वर्तमान शिक्षा को अभावात्मक बताया जहाँ छात्रों में अपनी संस्कृति के बारे में सीखने को कुछ नहीं मिलता। जहाँ उनमें जीवन के वास्तविक मूल्यों का पाठ नहीं पढ़ाया जाता।[12]

जहाँ शिक्षार्थियों में श्रद्धा का अभाव पनपता है। केवल पुस्तकालय को दिमाग में भर लेने से तो यह अधिक अच्छा है कि किन्हीं भी पाँच अच्छी बातों को लेकर अपने जीवन का निर्माण किया जाए। वर्तमान नकरात्मक शिक्षा की पोल खोलते हुए विवेकानन्द ने कहा– ''ऐसा प्रशिक्षण जो नकारात्मक पद्धति पर आधारित हो, मृत्यु से बुरा है। बच्चा स्कूल में ले जाया जाता है और पहली बात सीखता है कि उनका पिता मूर्ख है, दूसरी बात सीखता है कि उसका बाबा पागल है, तीसरी कि उसके सभी शिक्षक पाखण्डी है, चौथी सभी पवित्र ग्रन्थ झूठे है। 16 वर्ष होते–होते तो वह छात्र निषेधों का एक समूह, अस्थिहीन और जीवनहीन बन जाता है। यही कारण है कि 50 वर्षो में भी यह शिक्षा एक मौलिक व्यक्ति पैदा नहीं कर सकी है। प्रत्येक व्यक्ति जिसमें मौलिकता है। इस देश में नहीं बल्कि कहीं और पढ़ाया गया है, अथवा फिर उसे अन्धविश्वासों से मुक्त होने के लिए अपने देश के पुरातन शिक्षालयों में जाना पड़ा है।''[13]

विवेकानन्द ने निर्धनों, मध्यवर्ग तथा आम जनता के लिए निम्न प्रकार की संस्थाओं तथा सुविधाओं का वर्णन किया है। उनका विचार था कि आम जनता में शिक्षा–प्रसार हेतु प्रत्यक्ष प्रयास भी करना चाहिए तथा जनसाधारण में शिक्षा विस्तार हेतु यथासम्भव निम्नलिखित साधनों का उपयोग करना चाहिए।[14]

विवेकानन्द ने अपने पत्रों और भाषणों में चुन–चुन कर ऐसे विचार व्यक्त किए जो विश्व के किसी भी समाज को प्रगति के महान शिखर पर पहुंचा देने की क्षमता रखते हैं, बशर्ते की उन पर आचरण किया जाए। विवेकानन्द के दिमाग की खिडकियाँ खुली रखने के पक्ष में थे।[15]

स्वामी विवेकानन्द के ह्रदय में गरीबों और दलितों के लिए असीम सहानुभूति थी। इस दृष्टि से वे गाँधी के अग्रवाहक थे। वे सबसे बड़े समाजवादी थे। अमीर और गरीब के भेद को ठुकराकर पद दलितों को सीने से लगाने का सन्देश देते थे और अपने कर्ममय जीवन में, अपने मिशन में उन्होंने यह करके दिखलाया। विवेकानन्द की ललकार थी– ''गरीब और अभाव ग्रस्त पीड़ित और पददलितों, सब आओ, हम सब रामकृष्ण की शरण में एक हैं''

उन्होंने कहा ''हम पूजा के इस तामझाम को यानी देव मूर्ति के सामने शंख फूंखना, घण्टा बजाना और आरती बजाना छोड़ दे और गाँव–गांव में जाकर गरीबो की सेवा, गरीबों और पीड़ितों की सेवा करने का बीड़ा उठा ले।''[16]

उनका विश्वास था कि जहाँ जो कुछ अच्छा मिले, सीखना चाहिए। कूप मण्डूक बने रहने की प्रवृति हमें पीछे की ओर धकेलती है।[17]

विवेकानन्द ओज और तेजस्विता के पूज्जं थे, लेकिन मीठी वाणी और प्रेम व्यवहार उन्हें सदैव प्रिय था। उनका उपदेश था– 'संसार सिद्धान्तों की कुछ परवाह भी नहीं करता। वह मनुष्य ही को मानता है जो मनुष्य उन्हें प्रिय होगा, उसके वचन वे शान्ति से सुनेंगे, चाहे वह कैसे ही निरर्थक हों, परन्तु जो मनुष्य अप्रिय होगा, उसके वचन नहीं सुनेंगे। मनुष्य प्रेम को पहचानता है, चाहे वह किसी भी भाषा में प्रकट हो।

विवेकानन्द ने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की अपेक्षा कर्तव्यों को विशेष महत्व दिया। उन्हें इस बात पर खेद था कि विभिन्न समूहों और वर्गों के अधिकारों के समर्थकों में परस्पर तनाव और संघर्ष चलता रहता है, लेकिन अपने कर्तव्यों पर कोई बल नहीं देता। अधिकारों में परस्पर विरोधी सिद्धान्त पनप रहे हैं, किन्तु कर्तव्यों और दायित्वों के पालन के प्रति विशेष अभिरूचि का अभाव है। विवेकानन्द अपने अधिकारों के लिए आग्रह के पक्ष में थे, लेकिन कर्तव्यों की उपेक्षा उन्हें असहाय थी। उनका विश्वास था कि निष्काम कर्तव्य करते रहने पर अधिकारों की स्वयं सृष्टि हो जाती है।

विवेकानन्द एक व्यवाहारिक विचारक थे जिनकी अनुभूति थी कि विश्व में सर्वांग सुन्दर कुछ नहीं हो सकता। शुभ–अशुभ का विद्यमान रहना। आवश्यम्भावी है और साथ ही समाज में आप प्रत्येक व्यक्ति को सन्तुष्ट करने में सफल नहीं हो सकते। उनका कहना था कि 'सर्वाग सुन्दर जीवन' एक स्वविरोधी बात है। अतः हमें धर्म सदैव यही देखने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए कि ''विश्व की घटनाएं हमारे धर्म आदर्श से निम्न श्रेणी की हैं, एव यह जानकर सभी क्षेत्रों में सब वस्तुओं को हमें यथासम्भव अच्छी दृष्टि से ग्रहण करना चाहिए।''

अतः विवेकानन्द ने स्वयं पर विश्वास करने की प्रेरणा दी। आत्म विश्वास करने की प्रेरणा दी। आत्म विवास रखने पर ही व्यक्ति में कुछ करने की क्षमता विकसित होती है और आत्म–विश्वासी समाज ही समस्त बाधाओं को लाघँ कर उपर उठता है।

विवेकानन्द ने कहा, ''लोग कहते हैं– इस पर विश्वास करो, उस पर विश्वास करो, मैं कहता हूँ– पहले अपने आप पर विश्वास करो। अपने पर विश्वास करो, सर्वशक्ति तुम में है, इसकी धारणा करो और शक्ति जगाओ। कहों, हम सब कुछ कर सकते हैं, नहीं–नहीं कहने से तो साँप में भी विष नहीं रह जाता।[18]

अतः स्वामीजी ने समाज को प्रगति की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कीं

संदर्भ सूची :–

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्माः आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1971– पृ.– 585.

डॉ. अमरेश्वर अवस्थीः डॉ. रामकुमार अवस्थीः आधुनिक भारतीय राजनीति एवं सामाजिक चिन्तन, दिल्ली, रिसर्च पब्लिकेशन्ज इन सोशल सांइसीज, 1974–पृ. 80.

वही, पृ. 81

स्वामी विवेकानन्द, पत्रावली, श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, पृ.– 300।

डॉ॰ अमेश्वर अवस्थी, डॉ॰ रामकुमार अवस्थी, पूर्वोक्त, पृ॰–80।

वही, पृ. 81

स्वामी विवेकानन्द, विवेकानन्द साहित्य, पंचम भाग, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, 2000, पृ॰– 281

स्वामी विवेकानन्द, भारतीय नारी, श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, 2001, पृ॰–33।

वही, पृ. 49

वही, पृ. 85

स्वामी विवेकानन्द, हमारी शिक्षा, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2001, पृ॰–75।

डॉ॰ अमेश्वर अवस्थी, डॉ॰ रामकुमार अवस्थी, पूर्वोक्त, पृ॰–95।

वही, पृ. 95

स्वामी विवेकानन्द, शिक्षा, रामकृष्ण मठ, नागपुर , 1985, पृ॰–34

डॉ॰ अमरेश्वर अवस्थी, डॉ॰ रामकुमार अवस्थी, पूर्वोकत, पृ॰–86।

बी॰एन॰लूनियाँ, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, दिल्ली, कमल प्रकाशन, 1977, पृ॰ 102

वही,।

डॉ॰ शत्रुघ्न प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ॰–60।

Corresponding Author

Sunita Devi*

Assistant Professor, Public Administration, State Girls College, Hisar

E-Mail – arora.kips@gmail.com